

परम भागवत पण्डित मदन मोहन मालवीय

प्रो० महेन्द्र नाथ राय,
वरिष्ठतम आचार्य,
हिन्दी विभाग, बी०एच०यू०

7 अक्टूबर 2010, महालया। पितृ विसर्जन की पुण्यतिथि को पितरों को विदा करने के उपरान्त अभी घर के बरामदे में बैठा ही था कि अपने प्रिय शिष्यों डॉ० राजीव वर्मा एवं डॉ० अमित पाण्डेय के दर्शन हुए। इनका आग्रह था कि विश्वविद्यालय के पुरातन छात्र होने के नाते मालवीय जी महाराज पर आप द्वारा लिखित एक उद्गार हमें मिलना चाहिये। मैंने इसे अपना परम भाग्य माना कि चलिये इस तिथि पर स्वयं मालवीय जी को स्मरण करने का इन बच्चों ने अवसर दिया। नही तो, स्वयं के दायरे में निरन्तरबद्ध मेरे जैसा व्यक्ति मालवीयजी का स्मरण भला क्यों करने जाता? मुझे लगा कि इन बच्चों के अनुरोध के बहाने मालवीयजी महाराज ने स्वयं मेरी स्मृति की है। यह सोचकर हृदय भर आया। परम कारुणिक मालवीयजी अपने विशाल परिवारी जनों के योग-क्षेम की स्वयं चिन्ता करते रहते हैं।

महामना जिस कालखण्ड में अवतरित हुए थे, देश के लिये वह पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष का युग था। मुक्ति-संगम की इस वेला में सभी अपने-अपने स्तर पर नए भारत के निर्माण का मनोहर स्वप्न सजोये हुये थे। भारतीय नवजागरण सांस्कृतिक-सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक-सभी स्तरों पर कैसे रूप और आकार पा सके, कैसे यह देश मध्यकालीन रुढ़ियों और विश्वासों से उबर कर अपने निजत्व की पहचान कर सकें, कैसे उसकी अपनी धार्मिक-अध्यात्मिक धरोहर का तात्त्विक स्वरूप देश और दुनिया के सामने प्रकट हो सके, कैसे उसका विशाल और बेशकीमती भारतीय वाङ्मय सारे गर्द-गुबार को झाड़-पोछकर उसके मूल रूप में प्रकाशित हो सके- इसका यत्न इस देश और परदेश के सभी मनीषी चिंतकों, विचारकों, मूल्यधर्मी राजनीतिकों और राष्ट्रीयता के अग्रदूतों द्वारा समान रूप से हो रहा था।

मालवीय जी ने शैक्षणिक स्तर पर जागरण लाने का ऐसा प्रयास किया जो असमानान्तर महत्त्व का सिद्ध हुआ। उन्होंने देश के युवक-युवतियों को चेतना के स्तर उदबुद्ध करने और अपने निजत्व को पहचानने की दिशा में अग्रसर किया। उन्हें इसका अच्छी तरह बोध था कि यदि कोई जाति चेतना के स्तर पर अपने को मुक्त महसूस करती है तो वह वास्तव में मुक्त ही है, भले ही वह इतिहास के चौखटे में पराधीन हो। उनके अनुसार पराधीनता भीतर की होती है। अपने शैक्षणिक-जागरण के अभियान द्वारा मालवीय जी महाराज ने एक तेजस्वी, आत्मविश्वासी, राष्ट्रप्रेमी, चरित्रवान तथा मूल्यधर्मी ऐसी नई पीढ़ी का

निर्माण किया था जिसने नए भारत का नव-निर्माण किया।

मालवीयजी के देश से संदर्भित बहुविध प्रयत्नों को जो निरन्तर सफलता और विशाल जन-समूह का हार्दिक समर्थन मिला, अपने समय के विश्वविख्यात मनीषियों एवं चिन्तकों की जो सहमति मिली, उसका मूल कारण मेरी दृष्टि में उनका परमभागवत व्यक्तित्व था। वे सिर से पैर तक परम आस्तिक व्यक्ति थे। वही क्यों? उस युग की फिजां में ही यह आस्तिकता, आध्यात्मिकता और दार्शनिकता मौजूद थी। स्वामी विवेकानन्द, ऋषि अरविंद, महात्मा गाँधी, रविबाबू हों या मालवीय महाराज सभी के लिए स्वदेश भक्ति आध्यात्मिकता का ही पर्याय थी। भारत में कोई भी क्रांति धर्म और आध्यात्मिकता से विमुख होकर कभी संभव नहीं हुई। लेकिन इन महापुरुषों के लिए भक्ति और आध्यात्मिकता की हमेशा सामाजिक भूमिका बनी रही। धर्म और अध्यात्म इनके लिये एकांत कक्ष के साधनात्मक गुह्य प्रसंग कभी नहीं बने बल्कि व्यावहारिक स्तर पर उन्होंने धार्मिक जीवन जीने का हमेशा प्रमाण दिया। लोगों ने उन्हें हमेशा अपना दिशा-निर्देशक पाया, उनसे अपने जीवन-संघर्षों में प्रकाश और उन्हें अपना परमहितैषी माना। इन सभी महापुरुषों के मनस्-पिण्ड का निर्माण भारतीय धर्म दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों द्वारा हुआ था।

परम पूज्य मालवीय जी महाराज ने गीता प्रेस से छपे 'श्रीमद्भागवत' (2 खण्डों) की भूमिका के पूर्व भागवत की अनुशंसा में जो अपना हार्दिक उद्गार व्यक्त किया है उसे देखकर कोई भी सुधीजन इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि प्रत्येक महापुरुष की जागतिक उपलब्धियों के मूल में ईश्वरीय आस्था सबसे बड़ा संबल हुआ करती है। 'श्रीमद्भागवत' में आया है कि जिस शक्ति, वैभव, लोक-प्रतिष्ठा, अनुराग और कुशलता का विनियोग हम अपने बाल-बच्चों, कुटुंबियों और आत्मीय जनों के अभ्युत्थान के लिए करते हैं, वे सब असत् हैं लेकिन जब इन्हीं का उपयोग संसार के सभी प्राणियों के लिये करते हैं, जब सबमें अपने आत्मरूप का दर्शन करते हैं तब हमारा दृष्टिकोण व्यापक बन जाता है, बोध और विचारधारा का दायरा विस्तृत हो जाता है और यही 'सत्' है। मालवीयजी का समूचा व्यक्तित्व क्षुद्र दायरों को तोड़ चुका था। वे व्यापक मानवता के दृष्टिकोण से सोचते और आचरण करते थे। अकारण नहीं कि वे 'महामना' कहलाये। उनका सब कुछ आलोकधर्मी थे। बाहर से भीतर तक प्रकाश से परिपूर्ण थे। उन्होंने समाज को विद्या और ज्ञान के प्रति उत्सुक बनाया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र बताते थे कि भारत में विद्या का दान सबसे बड़ा दान माना जाता था और इसे देने वाला गुरु कहलाता था जो केवल शिक्षा ही नहीं, दीक्षा भी दिया करता था। गुरु दीक्षा देकर शिष्य में अपने ही को उतार देता था। शिक्षा तो अपने से पृथक् ज्ञान की दी जाती थी पर दीक्षा में तो गुरु शिष्य को अपने को ही दे दिया करते थे। मालवीय जी

महाराज ने प्राचीन गुरुकुलों का दृश्य आधुनिक युग में अपने विश्वविद्यालय द्वारा लोगों के समक्ष मूर्तिमान कर दिया। मालवीय जी के स्नातक अपने गुरुओं से नहीं, अपने गुरुओं में मिलने, उनमें अपना तादात्म्य करने की क्षमता रखते थे। मालवीय के लिए शिक्षा के गहरे निहितार्थ थे। उनकी शिक्षा जीवधारी का मनुष्य बनाती थी। उनके समय के शिक्षक अपने शील और सदाचार के कारण सबसे समादृत थे। उनकी जीवनचर्या का अपना स्तर था। उनकी भौतिक आकांक्षाएँ नाम मात्र की थी। आत्मिक स्तर पर वे बड़ी संपदा के संरक्षक हुआ करते थे। हमारे यहाँ पाण्डित्य और विद्वता से कई गुना अधिक महत्त्वशील और सदाचार को दिया। रघुनाथ जी में इस शील और सदाचार की पराकाष्ठा थी, इसीलिये उनकी तरह का कोई दूसरा महापुरुष नहीं हुआ।

परमभागवत् महामना सम्पर्क में आनेवाले सभी भीतर से अनुभव करते थे कि वे ऐसे वीतरागी महापुरुष थे जिनके राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके थे। आकस्मिक नहीं है कि जो भी उनके निकट साहचर्य में आता, परमशांति का अनुभव करता। उनके सारे कार्य ईश्वर को अर्पित थे। वे जो करते थे, सर्वोत्तम रूप में करते और परमात्मा का कार्य समझ कर करते। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण उनकी राष्ट्रभक्ति का मूर्तिमान विग्रह बना। जीवन पर्यन्त देश और समाज के जो-जो कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हुए सबकी सराहना हुई। वस्तुतः भगवान ने उनका स्वयं वरण किया था, अपनी विभुता के साँचे में ढाला था। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से उच्चतर मानवीय मूल्य, प्रेम-करुणा, अहिंसा और गहरी आस्तिकता के भाव निरन्तर प्रकाशित होते रहते। अकारण नहीं कि उनके प्रभामण्डल के भीतर जो भी आया, उन्हीं का होकर रहा गया। उनका होने और उनका कहलाने के लिये बड़े-बड़े मनीषियों, आचार्यों, ज्ञानियों और विज्ञानियों ने बहुत सारे जागतिक प्रलोभनों को ओर फूटी आँखों से ही भी नहीं देखा। आज भी मालवीय जी के इस विश्वविद्यालय से जुड़ा बौना से बौना आदमी भी उनके चलते देश-विदेश में जो मान और समादर प्राप्त कर लेता है उसे दूसरे नहीं कर पाते। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी महाराज को अपने प्राणों से भी प्रिय था। इस विश्वविद्यालय के द्वारा वे ऐसी शिक्षा पर जोर देते थे जो विद्यार्थियों को मनुष्य बनाए, उनकी बुद्धि को सुकर्म में जगाये। उनकी दृष्टि में देश का अभ्युत्थान उत्तम शिक्षा और शील-संस्कारों के विकास से ही संभव था। मालवीयजी केवल व्यावसायिक एवं भौतिक समृद्धि को ही पर्याप्त मानने वालों में न थे, आत्मविकास और आत्मिक उन्नति उनकी दृष्टि में केन्द्रीय थी।